

भक्ति और आध्यात्मिक प्रवृत्ति की ऐसी विरासत छोड़ जाने वाला यदि कोई संन्यासी होता तो इसमें नई बात नहीं थी, पर इस गुरु के बारे में आश्चर्य इस बात का है कि वह एक गृहस्थाश्रमी व्यापारी था और उसने केवल ३३ वर्ष की अल्पायु में ही अपनी जीवनलीला समाप्त कर दी थी।

श्रीमद् का जन्म सन् १८६७ में एक साधारण ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वयस्क होने पर बम्बई में वे हीरे-जवाहिरात के व्यापार में साझेदारी से जुड़े थे। अपने अंतिम एक-दो वर्षों को छोड़कर जीवन का अधिकतर समय उन्होंने व्यापार में ही बिताया था। तथापि आध्यात्मिक ज्ञान व सिद्धि के जिस उच्च स्तर तक वे पहुँच पाये थे इसका कारण उनकी अन्तःस्थ आध्यात्मिकता थी। सात वर्ष की आयु में उन्हें जातिस्मरण हुआ था। तभी से उनमें वैराग्य भाव उदय होने लगा था। उनकी बौद्धिक क्षमता भी असाधारण थी। १३ वर्ष की आयु में उन्होंने अष्टावधान का प्रयोग कर दिखाया था। इस क्षमता को निरन्तर विकसित करके वे शतावधानी बन सके थे। बम्बई में उन्होंने शतावधान के कुछ प्रयोग भी किये थे, जिन्हें आत्मसाधना में बाधक मानकर बाद में बंद किया था।

यह श्रीमद् की ज्ञानपिपासा ही थी जिसने उनको वेद, वेदान्त, गीता, भागवत, कुरान, जेन्द अवेस्ता और जैन आगमों का अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया था। इस प्रकार विविध धर्म-धाराओं के ज्ञाता होने पर भी वे शास्त्र-पंडित न बने रहकर आध्यात्मिक अनुभूति में विश्वास रखते थे। इसीलिए वे विचारधारा के वाद-विवाद को व्यर्थ मानते थे और आत्मदर्शन व आत्मप्रतीति पर बल देते थे। श्रीमद् के आत्मज्ञान से प्रभावित होने वालों में महात्मा गांधी भी थे। युवावस्था में जब उन्हें किसी आध्यात्मिक समस्या का सामना करना पड़ा था तब गांधी जी ने प्रत्यक्ष या पत्र के माध्यम से श्रीमद् से मार्गदर्शन प्राप्त किया था। इस तथ्य को स्वीकार करते हुए गांधीजी ने श्रीमद् राजचंद्र को अपना आध्यात्मिक गुरु बताया।

यद्यपि श्रीमद् की निष्ठा जैन धर्म के प्रति थी, फिर भी उनमें सांप्रदायिक संकीर्णता का नितान्त अभाव था।

आत्मज्ञानी श्रीमद् राजचंद्र

—नलिनाक्ष पंड्या

वल्लभ विद्यानगर, गुजरात

उन्नीसवीं शताब्दी में गुजरात में तीन महान पुरुष हुए थे। एक थे वैदिक परंपराके उद्धारक महर्षि दयानंद सरस्वती, जिनका जन्म मोरबी रियासत के टंकारा गाँव में औदीच्य ब्राह्मण परिवार में हुआ था। दूसरे थे भारत के राष्ट्रपिता विश्वंबंध महात्मा गांधी, जो पोरबंदर के लब्ध-प्रतिष्ठ मोठ वणिक परिवार में पैदा हुए थे। तीसरे महापुरुष जो हुए वह थे मोरवी राज्य के ववाणिया ग्राम के रायचंद्र भाई मेहता, जो श्रीमद् राजचंद्र के नाम से सुप्रसिद्ध हुए। दयानंद ने धर्मोद्धार की दिशा दिखाई, गांधीजी हमें राष्ट्रोद्धार के मार्ग पर ले गये, और श्रीमद् राजचंद्र आत्मोद्धार के पथ-प्रदर्शक बने।

श्रीमद् के आत्मनिष्ठ जीवन एवं चिंतन का उनके परिचय में आने वालों पर ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा था कि अपने अल्पायु में भी वह अनेक भक्त और अनुयायियों का समुदाय छोड़ गये थे, जिनके द्वारा स्थापित संस्थाएँ आज भी कई स्थानों पर उनके विचारों के प्रसार में प्रवृत्त हैं। ये स्मारक-संस्थाएँ ववाणिया, वडवा, खंभात, अगास, ईडर, राजकोट, उत्तरसंडा, नरोडा, नार, सुणाव, काविठा, भादरण, वसो, बोरसद, वटामण, धामण, सडोदरा, (सभी गुजरात में), आहोर (राजस्थान), हंपी (कर्णाटक), बम्बई, देवलाळी (महाराष्ट्र), इन्दौर (म० प्र०) और मोम्बासा (केन्या, अफ्रीका) में स्थित हैं।

इसका कारण उन्हें सभी प्रमुख धर्मों का अध्ययन होने के साथ-साथ संभवतः यह भी था कि उनके पिता सनातन-धर्मों दशा श्रीमाली वणिक थे और माता जैनी थी। वास्तव में श्रीमद् को उसी धार्मिकता में विश्वास था जो सांप्रदायिकता से परे हो। उन्होंने लिखा है : 'संसार में मान्यता भेद के बंधनों से तत्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकती। सच्चचा सुख व आनंद इनमें नहीं है।' कई प्रसंगों पर श्रीमद् ने वेदान्त, श्रीकृष्ण, जनक विदेही, शंकराचार्य, वामदेव, शुकदेव, नारद भक्ति सूत्र, योग वासिष्ठ, जड़भरत, कबीर, मीरा, नरसिंह मेहता, सुंदरदास आदि के दृष्टान्त दिये हैं, जो उनकी असांप्रदायिक समदर्शिता के परिचायक हैं। वस्तुतः उनके विचारों में आध्यात्मिक विषयों के बारे में मौलिक चिंतन पर आधारित सत्यान्वेषी दृष्टि दिखाई देती है।

स्वयं आत्मोन्मुखी होने की वजह से जैसे-जैसे अपने अनुभवों के प्रकाश में वे जीवन को समझते गये, श्रीमद् उन विचारों को कागज पर या डायरी में लिखते गये। यदि कोई दूरस्थ व्यक्ति भी अपनी किसी समस्या का आध्यात्मिक समाधान चाहता तो वे पत्र के द्वारा मार्गदर्शन देते थे। इसी कारण महात्मा गांधी के शब्दों में कहें तो 'उनकी लेखनी की यह असाधारणता है कि उन्होंने सिर्फ वही लिखा जो स्वयं अनुभव किया हो। उसमें कहीं कृत्रिमता नहीं है। दूसरों को प्रभावित करने के लिए उन्होंने एक पंक्ति भी लिखी हो ऐसा मैंने नहीं पाया।'

श्रीमद् द्वारा लिखित इन फुटकर नोट और पत्रों के रूप में ही उनके अधिकतर विचार संग्रहित हैं। तदुपरांत उनकी तीन रचनाएँ 'मोक्षमाला', 'भावनाबोध' और 'आत्मसिद्धिशास्त्र' हैं। 'मोक्षमाला' में धार्मिक समस्याओं को जैन दर्शन के आधार पर समझाया गया है, 'भावना-बोध' में आत्मश्रेयार्थी के लिए उपयोगी मार्गदर्शन है, तथा 'आत्मसिद्धिशास्त्र' में आत्मदर्शन विषयक विचारों को पद्य में समझाया गया है। चूंकि श्रीमद् की मातृभाषा गुजराती थी, उनका समूचा साहित्य गुजराती भाषा में है।

श्रीमद् की कृतियों में स्पष्ट रूप से झलकने वाला तत्त्व उनकी तीव्र आध्यात्मिक उत्कंठा है। यही कारण है कि स्वयं गृहस्थाश्रमी होने पर भी उनमें कोई सांसारिक

एषणाएँ नहीं थीं। यदि कोई अभीप्सा थी तो वह आत्मदर्शन की थी, जैसा कि उनके एक पत्र से प्रकट होता है : 'रात्रि और दिवस केवल परमार्थ का ही मनन रहता है। आहार भी वही है, निद्रा भी वही है, शयन भी वही है, स्वप्न भी वही है, भय भी वही है, भोग भी वही है, परिग्रह भी वही है, चाल भी वही है, आसन भी वही है। अधिक क्या कहें? अस्थि, मांस और मज्जा को एक ही रंग चढ़ा हुआ है। रोम मात्र जैसे उसी के विचार में रत है, और इस कारण से न कुछ देखना भाता है, न कुछ सूँघना भाता है; न कुछ सुनना भाता है, न कुछ चखना भाता है और न ही स्पर्श करना भाता है। न बोलने की चाह है, न मौन रहने की; न बैठने की चाह है, न जगने की; न खाने की चाह है, न भूखे रहने की; न असंग की चाह है, न संग की; न लक्ष्मी की चाह है, न अलक्ष्मी की; ऐसी स्थिति है। तथापि इसके प्रति कोई आशा या निराशा के भाव की अनुभूति नहीं होती।'

श्रीमद् की आत्मानुभूति की उत्कंठा उनकी इन काव्य-पंक्तियों में सुचारु रूप से अभिव्यक्त हुई है :

अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवरो,
क्यारे थईशुं बाह्यान्तर निर्ग्रंथ जो ?
सर्व सम्बंधनुं बंधन तीक्ष्ण छेदीने,
विचरशुं कव महत्पुरुषने पंथ जो ?

भक्ति को वे आत्मसाधना का श्रेष्ठ साधन मानते थे : 'अनेक दृष्टि से विचार करने पर मैं इस दृढ़ निर्णय पर पहुँचा हूँ कि भक्ति मार्ग ही सर्वोपरि है।' आत्मज्ञान के लिए उतना ही आवश्यक वे आत्मनिष्ठों के सत्संग को मानते थे। उनकी दृष्टि में सत्संग वह है जिससे आत्मसिद्धि हो सके। उत्तम शास्त्र में निरंतर दत्तचित्त रहना भी उनके मत से सत्संग ही है।

संसार व्यवहार के प्रति श्रीमद् निर्लिप्त थे : 'संसार के प्रति हमें परम उदासीन भाव है। यदि यह संसार सुवर्णका बन जाये तो भी हमारे लिए तृणवत् रहेगा और केवल परमात्मा की विभूति के रूप में भक्ति-धाम बना रहेगा।'

उनके इसी अनासक्ति भाव की वजह से वे भिन्न व विरोधी लगने वाली व्यापार और धर्म की प्रवृत्तियों का

सम्मिलन कर सके थे। अपनी दुकान में व्यापारी सौदों की वातचीत करने के तुरन्त पश्चात् वे आध्यात्मिक पाठ, लेखन या चर्चा में सहजता से लीन हो सकते थे। श्रीमद् की इस लाक्षणिकता से सुग्ध होकर गांधीजी ने लिखा है कि 'जो लाखों के सौदों की वातचीत करके शीघ्र ही आत्मज्ञान की गहन बातें लिखने में खो जाये उसकी जाति व्यापारी की न होकर शुद्ध ज्ञानी की ही हो सकती है।'

अपनी व्यावसायिक सफलता से श्रीमद् ने यह सिद्ध कर दिया था कि मनुष्य नीतिमान रहकर भी व्यापार कर सकता है। व्यापार-वाणिज्य में प्रचलित अप्रामाणिकता के सम्बन्ध में उनका कहना था कि शुद्ध आत्मज्ञानी को ठगना असंभव है। पूर्ण आत्मज्ञानी धोखेवाज व्यक्ति को

देखने के साथ ही पहचान जायेगा, क्योंकि पूर्ण आत्मज्ञान में न केवल स्वयं का अपितु अन्य के व्यक्तित्व का ज्ञान भी स्वतः निहित है। अपनी विरल हिन्दी काव्य-रचना में श्रीमद् ने कहा है :

जब जान्यो निज रूप को, तब जान्यो सब लोक।
नहि जान्यो जिन रूप को, सब जान्यो सो फोक॥

हमारे देश में प्राचीन काल में कई ऋषि, मुनि, साधु आदि हो गये हैं जिन्होंने आत्मज्ञान प्राप्त किया था, पर इसके लिए उन्होंने सांसारिक बंधनों को त्यागकर अरण्य-वास किया था, जबकि श्रीमद् संसार एवं संसार के मोहमायारूपी प्रलोभनों के बीच जलकमलवत् रहकर अर्वाचीन युग में आत्मज्ञान पा सके थे। यही उनकी सबसे बड़ी सिद्धि थी।